दैनिक जागरण

Date:14-12-23

बाजार के शिकंजे में सिविल सेवा परीक्षा

डॉ. विजय अग्रवाल, (लेखक सिविल सेवक रहे हैं)

पिछले दिनों एक फिल्म आई '12वीं फेल'। यह चंबल क्षेत्र के गांव में रह रहे एक ऐसे निम्न-मध्य वर्ग के युवक के आइपीएस अधिकारी बनने की कहानी है, जो नकल न कर पाने के कारण 12वीं में फेल हो गया था। ध्यान देने की बात यह है कि यह फिल्म उसके जीवन पर आधारित है। इसके आधार पर फिल्मकार को फिल्म में वह सब कुछ मसाला डालने का मौका मिल जाता है, जो दर्शकों की आंखों में आंसू लाने और उन्हें तालियां बजाने को मजबूर कर दे। ऐसी स्थिति में किसी भी रचना का सामाजिक सरोकार संदिग्ध हो जाता है।

पिछले कुछ वर्षों से संघ लोक सेवा आयोग यानी यूपीएससी द्वारा देश की सबसे प्रतिष्ठित मानी जाने वाली प्रशासनिक सेवाओं के लिए आयोजित सिविल सेवा परीक्षा काफी चर्चा में है। यह चर्चा कमजोर पृष्ठभूमि के युवाओं द्वारा प्राप्त की गई सफलताओं से लेकर यूपीएससी द्वारा सिविल सेवा परीक्षा को एक वर्ग विशेष के लिए लाभदायक बना देने तक फैली हुई है। अच्छी बात यह है कि डेढ़-दो दशक पूर्व तक लोगों के लिए लगभग अनजान-सी रही यह परीक्षा अब गांव-गांव तक के लोगों तक पहुंच गई है।

वर्ष 1979 में पहली बार अंग्रेजी के आधिपत्य को तोड़कर सिविल सेवा परीक्षा के द्वार अन्य भारतीय भाषाओं के लिए खोल दिए गए थे। इससे ठीक पहले हर वर्ष लगभग 600-700 पदों के लिए तीस हजार के करीब युवा आवेदन करते थे। इनमें बैठने वालों की संख्या करीब 16-17 हजार होती थी। अब पदों की संख्या अधिकतम एक हजार के आसपास है। इसके लिए लगभग 12 लाख युवा आवेदन करते हैं, जिनमें से करीब साढ़े पांच लाख परीक्षा में बैठते हैं। यह सिविल सेवा परीक्षा के लोकतंत्रीकरण का एक प्रमाण है।

यह अर्थशास्त्र का सिद्धांत है कि जैसे ही किसी को कहीं संभावना नजर आती है, वह अपने लिए बाजार तैयार करने में लग जाता है। चूंकि बाजार के अस्तित्व के लिए उपभोक्ताओं की संख्या का पर्याप्त होना प्राथमिक शर्त होती है, इसलिए उसका एक काम यह भी होता है कि वह अपने लिए नए-नए उपभोक्ता तैयार करे। ऐसा करने में आज यूट्यूब जैसे प्लेटफार्म भी बड़ी भूमिका निभा रहे हैं। सिविल सेवक को ऐसे ग्लैमरस तरीके से पेश किया जा रहा है, जो सत्य से परे है।

उदाहरण के तौर पर किसी सर्किट हाउस को कलेक्टर के निवास के रूप में दिखाना। यहां तक कि सेलेब्रिटी बनने के मोह में कुछ आइएएस अफसर बालीवुड के सदस्यों की तरह अपनी गतिविधियों को इंटरनेट मीडिया पर पेश कर रहे हैं। इन सबसे बाजार ने युवाओं की आंखों में आइएएस बनने के सपनों की फसल बोने में सफलता प्राप्त कर ली है। चूंकि इंजीनियरिंग और मेडिकल की प्रवेश परीक्षाओं की कोचिंग का माडल पहले से ही मौजूद था, इसलिए आइएएस की परीक्षा की तैयारी कराने के लिए किसी स्वरूप पर विचार करने की कोई बहुत अधिक आवश्यकता नहीं पड़ी। धीरे-धीरे जगह-

जगह कोचिंग सेंटर खड़े होने लगे। बड़ी-बड़ी कंपनियों के स्वरूप से लेकर छोटे-छोटे ट्यूशन टाइप के संस्थान तक। इन सबके मिले-जुले प्रयासों ने युवाओं के मन में यह बात बैठाने में सफलता प्राप्त कर ली कि कोचिंग के बिना इस कठिन परीक्षा की वैतरणी को पार करना उनके लिए लगभग असंभव है।

बाजार तरह-तरह से यह बताकर कि 'तुमसे यह न हो सकेगा', उपभोक्ताओं के आत्मविश्वास को कमजोर करता है। स्वयं को सही सिद्ध करने के लिए वह सरल-सी प्रक्रिया को भी पहले अत्यंत जटिल बनाता है। फिर उसका समाधान प्रस्तुत करता है। वर्तमान में सिविल सेवा परीक्षा की तैयारी के स्वरूप का इतना मशीनीकरण कर दिया गया है कि परीक्षा की तैयारी करने वाला युवा कोचिंग के अभाव में स्वयं को अत्यंत असहाय पाने लगा है। इससे न केवल युवाओं के बीच सफल होने की गला-काट प्रतियोगिता बढ़ गई है, बल्कि ऐसी प्रतियोगिता कोचिंग संस्थानों के बीच भी होने लगी है।

येन-केन-प्रकारेण किसी भी हालत में युवाओं को अपने यहां दाखिला लेने के लिए आकर्षित करने की होड़ शुरू है। परीक्षा के परिणाम घोषित होते ही सफल उम्मीदवारों को अपने यहां का विद्यार्थी बताकर उनकी सफलता का श्रेय लेने की प्रवृत्ति ने विज्ञापन को काफी कुछ हास्यास्पद बना दिया है। इसके फलस्वरूप कुछ दिनों पहले ही केंद्रीय उपभोक्ता संरक्षण प्राधिकरण ने कुछ कोचिंग संस्थानों पर आइएएस बनाने का हवा-हवाई दावा करने के आरोप में आर्थिक जुर्माना लगाया तो कई को नोटिस भेजा।

यहां एक सीधा-सा प्रश्न यह उठता है कि जब कोचिंग संस्थान सफल उम्मीदवारों के नाम और उनकी बड़ी-बड़ी तस्वीरें अखबारों और पत्रिकाओं में छापकर उन्हें अपने यहां का छात्र बता रहे होते हैं तो ताजे-ताजे सिविल सेवक बने हमारे युवा इस पर आपत्ति क्यों नहीं करते? उनकी चुप्पी मन में संदेह पैदा करती है। जहां तक मेरी जानकारी है, वर्ष 2018 बैच के टापर कनिष्क कटारिया एकमात्र ऐसे युवा थे, जिन्होंने सीधे-सीधे इस तरह के विज्ञापन को नकारते हुए उस पर आपत्ति जताई थी।

देश में सिविल सेवा परीक्षा के एक ऐसे सम्मोहक मायाजाल की रचना कर दी गई है, जिसके सामने विवेक ने हथियार डाल दिए हैं। पात्रता और योग्यता का अंतर मिट गया है। सालों-साल कोशिश करने के बावजूद सफलता से कोसों दूर रहने के बाद भी वे अपने निर्णय पर तर्कपूर्ण तरीके से पुनर्विचार करने को तैयार नहीं होते। '12वीं फेल' फिल्म की 'हार नहीं मानूंगा' जैसी पंक्तियां उन्हें उकसाती रहती हैं, लेकिन वह थोड़े समय तक ही टिकती है। इसके बावजूद बाजार अपने पूरे जोर पर है। साथ ही युवाओं का जोश भी। अब प्रतीक्षा एक ऐसी फिल्म की है, जो नौजवानों के विवेक को जागृत करके सही निर्णय लेने में उनकी सहायता कर सके।

दैनिक भास्कर

Date:14-12-23

इजराइल पर अमेरिकी रुख से असमंजस की स्थिति

संपादकीय

अमेरिकी राष्ट्रपति बाइडेन और इजराइली प्रधानमंत्री नेतन्याहू के बीच अब मतभेद सार्वजनिक होने लगे हैं। राष्ट्रपति कह रहे हैं कि इजराइल के इतिहास में ऐसा अड़ियल नेतृत्व पहले कभी नहीं आया था और हमास पर हमले के अभियान के कारण यह देश अंतरराष्ट्रीय समर्थन खोने लगा है। उधर नेतन्याहू ने माना कि अमेरिका से ' हमास के खात्मे 'के बाद क्या' के सवाल पर मतभेद हैं। बहरहाल उनका विश्वास है ये मतभेद खत्म कर लिए जाएंगे। लेकिन दुनिया इस बात से चिंतित है। कि क्या दो देशों के बीच युद्ध की स्थिति और उससे उप मानव-हिंसा को पूरी दुनिया असहाय होकर देखती रहेगी। फिर क्या मतलब है यूएनओ या इस जैसी तमाम क्षेत्रीय संस्थाओं का । बाइडेन के इस बयान के 72 घंटे पहले ही अमेरिका ने यूएन महासचिव के असाधारण प्रस्ताव को सुरक्षा परिषद में वीटो का इस्तेमाल कर खारिज कर दिया, जिसमें संस्था के संविधान के अनुच्छेद 99 के तहत तत्काल युद्धविराम का प्रावधान है। इसका नतीजा यह हुआ कि उत्साहित होकर इजराइल ने हमले बढ़ा दिए। अभी तक इस युद्ध में 17 हजार लोग मारे गए हैं। अमरीकी वीटो ने एक बार फिर यूएन की प्रासंगिकता ही नहीं अस्तित्व पर सवाल उठा दिए हैं । मुद्दा मात्र एक है गलती किसी की भी हो, क्या नरसंहार जारी रहेगा?

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:14-12-23

अप्रत्यासित प्रगति

संपादकीय

संयुक्त अरब अमीरात द्वारा जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन के कॉन्फ्रेंस ऑफ पार्टीज के 28वें संस्करण (COP28) की मेजबानी को लेकर कई सवाल खड़े किए गए थे। कॉप28 के अध्यक्ष सुल्तान अल-जाबेर अबू धाबी नैशनल ऑयल कंपनी के प्रमुख भी हैं और इस बात ने कई लोगों को चिंतित कर दिया था कि जीवाश्म ईंधन की खपत का बचाव इस कॉप में जरूरत से कहीं बड़ी भूमिका निभा सकता है।

परंतु सख्त बातचीत के बाद एक दिन की देरी से हुई कॉप28 घोषणा में एक कदम आगे बढ़ने में मदद मिली। हालांकि यह घोषणा अमेरिका, जापान और ऑस्ट्रेलिया द्वारा समर्थित छोटे द्वीपीय राज्यों की सभी जीवाश्म ईंधन को 'चरणबद्ध तरीके से समाप्त' या 'चरणबद्ध ढंग से कम' करने की मांग को पूरा नहीं कर सकी, लेकिन अंतत: इसने सभी देशों का आह्वान किया कि वे ईंधन व्यवस्था में जीवाश्म ईंधन से दूर जाएं।

यह काम व्यवस्थित और न्यायसंगत तरीके से करने की बात कही गई। यह भी कहा गया कि इस 'अहम दशक में इसकी गति तेज' की जाए। यह भाषा इस सप्ताह के आरंभ की तुलना में अधिक दबाव वाली है। उस समय कुछ देश खासकर सऊदी अरब जीवाश्म ईंधन से संबंधित किसी भी बात को रोकने को लेकर प्रतिबद्ध नजर आ रहा था।

परंतु कॉप28 के बिना किसी मसौदा निर्णय के समाप्त हो जाने की आशंकाओं के बीच आखिरकार एक सहमति बनी। यह आशंका इसलिए उत्पन्न हुई थी कि कुछ वार्ताकारों ने बिना जीवाश्म ईंधन के प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया था।

बहरहाल, कॉप28 के अंतिम मसौदे के दो तत्व मौजूदा जीवाश्म ईंधन कंपनियों और निर्यातकों की रुचि का विषय हैं। पहला, यह कि 'दूरी बनाने' की बात ऊर्जा क्षेत्र में जीवाश्म ईंधन तक सीमित है। कई बड़ी पेट्रोकेमिकल्स कंपनियों की भविष्य की योजनाएं तरल से केमिकल्स पाइपलाइन पर केंद्रित हैं।

उदाहरण के लिए सऊदी अरब की अरामको ने 2022 में प्रति दिन 1.15 करोड़ बैरल कच्चे तेल का उत्पादन किया। उसका अनुमान है कि 2030 तक 40 लाख बैरल रोजाना के बराबर हिस्सा केमिकल उत्पादन के लिए अलग रखा जाएगा। दूसरा, अंतिम मसौदे में एक खास संदर्भ ईंधन बदलाव से संबंधित है। यह प्राकृतिक गैस से संबंधित है। यह परिशोधित पेट्रोलियम की तुलना में 70 फीसदी कार्बन और एंथ्रेसाइट कोयले की तुलना में 50 फीसदी उत्सर्जन करती है।

इन वार्ताओं में भारत सरकार की वास्तविक स्थिति का अनुमान केवल नतीजों से ही लगाया जा सकता है। यह बात ध्यान देने लायक है कि अंतिम बातों में कोयले से बनी बिजली से जुड़ी भाषा को शिथिल कर दिया गया। इसमें कोयले का इस्तेमाल चरणबद्ध ढंग से कम करने की गति बढ़ाने की बात कही गई जबकि पहले कहा गया था कि कोयले का इस्तेमाल तेजी से कम किया जाएगा और नई कोयला आधारित बिजली परियोजनाओं को मंजूरी देने पर रोक लगाई जाएगी।

शायद यह बदलाव भारतीय वार्ताकारों की ओर से जताई गई चिंताओं की वजह से किया गया, जिन्होंने बहुपक्षीय जलवायु मंचों पर घरेलू कोयला क्षेत्र का बचाव करना जारी रखा है।

उल्लेखनीय बात है कि भारत ने नाभिकीय ऊर्जा, जलवायु और स्वास्थ्य समझौतों पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं, लेकिन आगे चलकर भारत के नीति निर्माता इस विषय में अपनी स्थिति की समीक्षा कर सकते हैं। उस लिहाज से भारत और चीन ने अंतिम शब्दावली को सीधे तौर पर जीवाश्म ईंधन बदलाव से जोड़ा ताकि 2050 तक विशुद्ध शून्य का लक्ष्य हासिल किया जा सके। यह घरेलू लक्ष्यों से दशकों पहले है।

दो अन्य उल्लेखनीय रियायतों में 2030 तक वैश्विक मीथेन उत्सर्जन को काफी हद तक कम करने के संदर्भ की अनुमति देना भी शामिल है। चूंकि यह पशुपालन से जुड़ा है, इसलिए भारत में यह राजनीतिक दृष्टि से बहुत संवेदनशील मसला है। वे समझौते जिन्हें विकासशील देशों को भी अगले वर्ष अगले दौर के लक्ष्य में प्रोत्साहित करना चाहिए, उन्हें भी महत्त्वाकांक्षी, अर्थव्यवस्था व्यापी उत्सर्जन कटौती लक्ष्य के साथ सामने आना चाहिए।

यह कार्बन डाइऑक्साइड और ऊर्जा क्षेत्र पर संकीर्ण ध्यान से काफी अलग है। जाहिर है समझौते की भाषा हर किसी को संतुष्ट नहीं करेगी, लेकिन यह एक अग्रगामी कदम है। जीवाश्म ईंधन का अंत पहले भी वैश्विक सहमति का हिस्सा नहीं रहा है और कॉप28 अनुमान से अधिक सफल रहा है।

THE TIMES OF INDIA

Date:14-12-23

Do Buy What Was Said In Dubai

COP28 took a realistic approach to transitioning from fossil fuels. India's argument that only coal can't be a climate villain won. But the rich world still isn't forking out enough cash

Chandra Bhushan, [Environmentalist, attended COP 28]

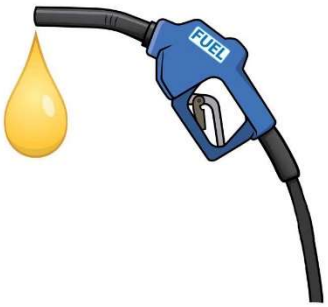

As the gavel struck, albeit a day later than the deadline, to mark the agreement at COP28, it signalled more than just the usual closure of another United Nations climate negotiation. This time, the setting was Dubai, presided over by the CEO of one of the world's biggest oil companies, and the subject was fossil fuels.

Fossil fuels to the fore | For three decades, the international community has avoided the direct mention of fossil fuels in climate agreements due to the staunch resistance from major oil and gas producers. However, COP28 shattered this status quo. The decision to transition away from fossil fuels marks a significant leap towards acknowledging and addressing the root cause of climate change.

Message, not mandate | The agreement, aiming for a "just, orderly, and equitable transition away from fossil fuels", has nuanced wording to start reducing the production and consumption of fossil fuels. While it is not an explicit call for a phase-down or a phase-out, it sends an unmistakable message to the fossil fuel industry: the era of unchecked fossil fuel consumption is drawing to a close.

Fund for the vulnerable | COP28 will be also remembered for operationalising the Loss and Damage Fund on the very first day of the conference to support vulnerable developing countries in dealing with climate disasters. While the initial pledges to the fund remain about $800 million, which is far less than what is needed, the operationalisation of the fund marks an important milestone in the climate justice movement.

Echoing G20's India summit decision | Dubai COP also enhanced the mitigation ambition by adopting the decision taken by G20 under India's presidency to triple renewable energy capacity and double energy efficiency improvements globally by 2030.

India's pragmatism delivers | At COP28, India's steadfast advocacy for a comprehensive approach to fossil fuel reduction also saw fruition. At COP27 in Sharmel-Sheikh last year, India was the first country to demand a phase-down of all fossil fuels and not just coal to accelerate climate action. This year's agreement on transitioning away from fossil fuels can be seen as a direct result of India's initiative last year.

Sustainability is acknowledged | Modi's call in Dubai for sustainable consumption patterns found resonance in the 'UAE Consensus'. The inclusion of India's emphasis on transitioning to sustainable lifestyles, circular economy practices, and sustainable production patterns in the consensus text highlights India's role.

Slow progress carries risks | The shortcomings of the Global Stocktaking (GST) process were glaringly evident. This critical component, designed to evaluate global progress in addressing climate change, acknowledged the stark reality: current efforts are insufficient, steering us towards a worrying 2.7°C rise in global temperatures. GST's failure to assign clear responsibility and provide actionable guidance was a significant missed opportunity. Especially concerning was its failure in highlighting the unfulfilled commitments of developed nations and its apparent leniency towards China, the world's largest emitter.

Double standards of developed countries | The fact is that developed countries have consistently not met any of their commitments on emissions reduction or financial support. They continue to invest in new fossil fuel infrastructure and emit more than their fair share. For instance, the US presently is the largest producer of oil and gas, producing nearly a quarter of global natural gas and 15% of world's crude oil. And the Biden administration has recently approved new offshore oil and gas leases. Developed countries have also not met their collective finance obligations of providing $100 billion to developing countries.

China, elephant in the room | The country's GHG emissions, a quarter of the global emissions, need to peak and reduce quickly to have any chance of meeting the 1.5°C target. Yet, GST failed to point out this crucial issue. The lessons from the first GST are that global climate action needs more than just pledges; it demands accountability, transparency, and equitable responsibility-sharing.

Business takes centrestage | With 70,000 confirmed attendees, it dwarfed the previous record of 30,372 set at COP21, where the landmark Paris Agreement was forged. While some derided the large presence of businesses and lobbyists, the fact is that the resolution of the climate crisis will need proactive participation of businesses. For years now those in the field of sustainable development have argued for the need of a meeting between environmental concerns and business interests. COP28 was a firm step towards such collaboration.

Why 'UAE Consensus' matters | It's a bold step forward. The decisions in it, and the scale at which they were showcased, reflect a growing recognition of the urgency of climate action and the need for substantive policy shifts – even in regions highly reliant on fossil fuels. Central to this shift is the emerging narrative of a just, orderly, and equitable transition away from fossil fuels – a theme that will increasingly dominate global discourse as countries internalise the imperative of shutting down fossil fuel establishments and diversifying their economies.

THE HINDU

Date:14-12-23

Article 370 judgment is a case of constitutional monism

Zaid Deva, [Lawyer based in Srinagar]

More than four years after the abrogation of Article 370, the Supreme Court of of the actions of the Indian government. While much of the discourse around the judgment has focused on the question of statehood, it is important to remember that the special status of Jammu and Kashmir (J&K) was really at the heart of the matter.

To arrive at its conclusions, the Court employs a historical, textual, and structural interpretation of the Constitution of India, and all three approaches are deeply informed by constitutional monism. Here are three sites where the Court employs a monist reading of the Constitution, and why this sets a dangerous precedent for federalism in India.

Federalism and constitutional sovereignty

The monism that is reflected in the judgment imagines the Union Constitution as the sole bearer of internal and external sovereignty. While this may be true, Article 370 laid down an elaborate framework for the distribution of powers and authority between the Union and the State governments. This was affirmed by the J&K Constituent Assembly and not just as an interim measure pending total integration. Its Basic Principles committee's report, based on which the State Constitution was drafted, stated: "The sovereignty of the State resides in the people thereof and shall except in regard to matters specifically entrusted to the Union be exercised on their behalf by the various organs of the State...the State's legislature will have powers to make laws for the State in respect of all matters falling within the sphere of its residuary sovereignty.

By focusing more on the particular concept of sovereignty "which requires no subordination to another body', the Court ends up refusing to recognise the shared sovereignty model of Article 370. After all, sovereignty in federal constitutions is not a binary concept restricted to a simple 'is' or 'isn't' classification. Rather, it encompasses various dimensions and exists along a spectrum of degrees.

The contingency of the presidential power

Another site where the Court's monism operates is in its reading of Clause 3 of Article 370. The Court rejects the argument that Article 370 had gained permanence after the dissolution of the Constituent Assembly as this 'is premised on the understanding that the constitutional body had unbridled power to alter the constitutional integration of the State with the Union'. The Court also relies on Clause 3 to hold that Clause 1 could be operated without the concurrence of the State government since 'the effect of applying all the provisions of the Constitution to Jammu and Kashmir through the exercise of power under Article 370(0)(d) is the same as issuing a notification under Article 370(3)".

In a constitutional democracy, no body or institution has unbridled powers. Further, Clause 3 of Article 370 is primarily concerned with the relationship of two powers and not just the status or the relationship of the power-bearing entities. The proviso to Clause 3 makes it clear that the presidential power to abrogate Article 370 was contingent on the recommendation of the Constituent Assembly.

As it is in the nature of the presidential powers under Clause 3 to be contingent on the Constituent Assembly, this limitation does not die with the dissolution of the Assembly. The relation of powers here does not mean that the President becomes 'subordinate to the Constituent Assembly but that power as a federal arrangement has been distributed across multiple axes under Article 370. The interpretation of Clause 1 that the Court offers is based on syllogistic reasoning but one that collapses the question of the nature of powers into the question of the effect of powers. Holding that the President has the untrammelled power to abrogate Article 370 and order a total application of the Indian Constitution to the State to the effect that the State's Constitution becomes inoperative is an "unbridled power' that defies the logic of federalism and constitutional democracy.

State's views on its future

The judgment's monism imagines popular sovereignty as a monolith where since the views of an individual State for the purposes of reorganisation are not binding on Parliament, Parliament, therefore, is well placed to speak for the state. Justice Sanjay Kaul holds that 'views are to be taken from the entire nation via the Parliament, as the issue leading to the reorganisation affects the nation as a whole".

There are many sites within the Constitution where a recommendatory power is vested in a body. Merely because that power may not be binding does not mean that the power can be taken over by another body or that power need not be exercised because at its heart lies the question of agency. The inevitable conclusion that one arrives at is that the popular sovereignty of a State's people vis-à-vis the State becomes subordinate to the popular sovereignty of the entire nation vis-à-vis the Union as well as the States. This is particularly worrying in the context of J&K where the threshold for reorganising the State was historically much higher compared to the other States.

By relying on a monist reading of the Constitution, in a context that defies monism, the Court has not only upheld the abrogation of Article 370 but has also put its stamp of approval on the silencing, and rendering inconsequential, of the voice of the people of the former State of J&K